THE ECONOMIC TIMES

Date: 03-11-25

Rare Earth Routes & An Alternative Path

Normalising economic relations with China vital

ET Editorials

The US-China trade truce buys India critical time to build its stockpile of rare earth magnets, as it puts in motion a plan to raise domestic production and diversify its pool of imports. Several tranches of licences have been issued for mining rare earth elements. Fiscal incentives are being offered to scale up production of rare earth magnets. An emergency fund has also been earmarked to tide over short-term import disruptions. India is pursuing bilateral and multilateral efforts, too, to reduce dependence on China. Normalising economic relations with China is vital to executing a fallback plan for rare earth elements. The cumulative impact of policy interventions is substantial for India's medium-term export and sustainability strategies, given the oversized impact of rare earth magnets in sectors such as consumer electronics and EVs.

Alternatives to rare earth elements in production of magnets open up further risk-mitigation strategies for countries with little import-substitution capacity. Research is throwing up interesting options for making permanent magnets free of rare earth elements. These are not as powerful, and efforts are on to identify magnetic materials that can pack as much punch while also rethinking motor design to incorporate the extra complexity. Another approach involves eliminating heavy rare earth elements from magnets so that loss of potency is contained with consequent lesser requirement for redesign of motors. Finally, permanent magnets can be replaced with electromagnets, providing a radically different pathway for the evolution of EVs. This last option is desirable from a sustainability perspective because it avoids the environmental degradation involved in mining and processing rare earth elements.

With the likelihood of severe disruption in supplies of rare earth elements receding, India should position itself at the forefront of the resilience campaign. It is key to the country's ambitions of emerging as a global manufacturing base, while remaining true to its climate commitments.

THE HINDU

Date: 03-11-25

Cruising ahead

India's shipping sector needs help from the government to thrive

Editorial

The India Maritime Week event, headlined by Prime Minister Narendra Modi, signalled government recognition that shipping is not just a business but a business with a strong strategic component. The Indian shipping sector had declined considerably over nearly two decades under the ideological framework of liberalisation, privatisation and globalisation, which weakened government support and diluted strategic intent for shipping. Barring port infrastructure, the Indian government seemed keen largely only on training and educating sea-farers so that they could continue to serve on foreign ships and bring in foreign exchange. The state-owned Shipping Corporation of India (SCI), once a global leader in ship ownership, was allowed to decline. Favourable government policies, such as giving the company first rights to transport India's oil, were withdrawn in the name of a level playing field and SCI barely escaped privatisation. But COVID-19 was a rude awakening. With India depending heavily on foreign-owned ships, it had little leverage to intervene in its own trade. Private Indian shipping was too small to step up fully. Post-pandemic, the government has realised that shipping, though a business, has much strategic importance, especially during times of disruption, war, and where protectionism and resurgent national interests of western countries rule trade. Recent government initiatives have sought to beef up the SCI's fleet strength.

A major part of the lakhs of crores of rupees in investments announced at the maritime week was port-related. The government has been running its ports under a landlord model, sharing revenue with private and foreign companies for terminal operations, which are now a target of investors. This has given the ports financial heft to embark on new projects — the Chennai and Kolkata ports, for instance, have taken up the transshipment hub project in the Andamans. Investments are also seen in port connectivity, Sagarmala projects, and Indian seafarer training. Another major push has been to have foreign shipping companies register their ships in India through their local subsidiaries, which would give the Indian government leverage over them for serving Indian needs as well as support allied businesses such as insurance. But movement is still barely visible in Indian merchant shipbuilding, where greater progress would have signalled industrial, technical, and project management expertise in heavy industry. The day that Indian shipyards quickly roll out state-of-the-art LNG ships or futuristic green fuel burning vessels, Indian shipping will be truly cruising full ahead.

दैनिक जागरण

Date: 03-11-25

आवश्यक है नए शहरों का निर्माण

जीएन वाजपेयी, (लेखक सेबी और एलआइसी के पूर्व चेयरमैन हैं)

बीते दिनों बेंगलुरु जाना हुआ। एयरपोर्ट से बाहर निकलते वक्त रात हो गई थी और यह वह समय होता है जब माना जाता है कि शहर में ट्रैफिक के चरम की स्थिति निकल चुकी होती है। इसके बावजूद शहर के एक प्रमुख केंद्र रिचमंड सर्कल तक पहुंचने में डेढ़ घंटे से अधिक का समय लग गया। सफर अपेक्षाकृत लंबा था तो इस दौरान ड्राइवर ने उन समस्याओं की ओर संकेत करना भी शुरू किया कि कैसे शहर से आइटी कंपनियां स्थानांतरित होने लगी हैं और अन्य इलाकों में नए कैंपस बनने शुरू हो गए हैं।

अभी बहुत ज्यादा दिन नहीं हुए हैं जब कर्नाटक सरकार के एक वरिष्ठ मंत्री और कारपोरेट जगत की एक दिग्गज के बीच शहर के लचर बुनियादी ढांचे को लेकर कहासुनी हुई थी। बेंगलुरु की कहानी दर्शाती है कि भारत का आइटी हब कहा जाने वाला यह शहर अपनी ही सफलताओं के बोझ तले दबा हुआ है। देश में आइटी उद्योग तेजी से फैल रहा है और कई राज्यों ने उद्यमियों को अपने यहां प्रतिष्ठान स्थापित करने के लिए लाल कालीन बिछाना शुरू कर दिया है।

वैसे तो पूर्वी और उत्तर भारत के शहर आइटी प्रतिभाओं की खान हैं, लेकिन इन क्षेत्रों के शहर उद्यमियों की संभावना सूची में नहीं हैं। वहीं, उपलब्ध जानकारियों से यह भी सामने आ रहा है कि जोहो, एसएपी, पेपाल और एनवीडिया आदि के एक तिहाई से अधिक कर्मचारी टीयर 3 कालेजों से आते हैं। उद्यमियों को लुभाने के लिए उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने आइटी और डाटा केंद्रों सहित नौ औद्योगिक और वाणिज्यिक क्लस्टरों के लिए भूमि आवंटित करने की घोषणा की है, पर यह पर्याप्त नहीं। प्रौद्योगिकी-आधारित औद्योगिक और वाणिज्यिक केंद्र मानव संसाधनों की उपलब्धता पर निर्भर करते हैं।

इस समय जेन जी बहुत चर्चा में है। वर्ष 1997 से 2012 के बीच जन्मे लोगों की यह पीढ़ी भविष्य के लिए प्रतिभा पूल का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनने जा रही है। यह पीढ़ी कामकाज के लिए ऐसा परिवेश चाहती है, जो लचीलेपन, मानसिक स्वास्थ्य और कल्याण पर जोर देता हो। यह पीढ़ी कामकाजी जीवन और निजी जिंदगी में संतुलन को प्राथमिकता देती है और पिछली पीढ़ियों के पारंपरिक रुख-रवैये को खारिज करती है। इस पीढ़ी को एक जीवंत सामाजिक परिवेश पसंद है। बेंगलुरु और भारत के अन्य महानगर इस प्रकार का परिवेश प्रदान नहीं करते। वहां, प्रवासन अनिवार्य है।

वैश्विक आइटी हब कही जाने वाली अमेरिका की सिलिकान वैली को देखें तो यह करीब एक दर्जन छोटे कस्बों-शहरों में फैली हुई है। प्रमुख वैश्विक आइटी दिग्गजों के मुख्यालय इन इलाकों में स्थित हैं। एपल क्यूपर्टिनो में, गूगल माउंट व्यू में, मेटा मेनलो पार्क में और सिस्को सैन जोस में। इनमें से कोई भी नगर दस लाख की जनसंख्या से अधिक का नहीं है। वहां किसी भी कामकाजी व्यक्ति के लिए अपने बच्चे को स्कूल से लेना और घर पर ही लंच का लुत्फ उठाना संभव है।

आइटी हब का इकोसिस्टम ऐसे ही नहीं स्थापित होता। उसमें गहरे प्रतिभा पूल, विश्वविद्यालय-उद्योग के बीच मजबूत संबंध, सहायक बुनियादी ढांचा और जीवन, निवास और संपत्ति की सुरक्षा में विश्वास जैसे पहलू शामिल हैं। ऐसे

इकोसिस्टम का निर्माण भौतिक बुनियादी ढांचे से शुरू होता है। इसमें उत्तर प्रदेश की ही मिसाल लें तो राज्य की एक्सप्रेसवे निर्माण में सफलता प्रशंसनीय है।

सभी एक्सप्रेसवे राज्य के महत्वपूर्ण शहरों से होकर गुजरते हैं, जहां कुछ प्रसिद्ध विश्वविद्यालय स्थित हैं। इसलिए, उन एक्सप्रेसवे के साथ 150 किमी के दायरे में भौतिक बुनियादी ढांचा विकसित करना समझदारी भरा है। इसमें यह ध्यान रखना होगा कि प्रस्तावित क्लस्टर मुख्य शहर के बहुत करीब नहीं होने चाहिए, ताकि वे एक समूह का हिस्सा न बन जाएं और प्रतिभा की अपेक्षाओं पर खरे न उतर सकें।

एक नए क्लस्टर शहर निर्माण की रूपरेखा में औद्योगिक और वाणिज्यिक परिसरों और एक आवासीय टाउनशिप को शामिल करना चाहिए। एक आधुनिक टाउनशिप के निर्माण में धैर्यशील पूंजी, जोखिम उठाने की मानसिकता, शहर योजनाकारों, आधुनिक निविदाओं और सुगम शासन की आवश्यकता होती है।

इस पैमाने पर सफलता को शहर के निर्माण की गति और गुणवत्ता से मापा जाना चाहिए। इसमें 'बिल्ड, आपरेट और ट्रांसफर' का सिद्धांत सबसे व्यावहारिक विकल्प है। इसके लिए लीज कम से कम 99 वर्षों के लिए होनी चाहिए और इसे आगे 99 वर्षों के लिए बढ़ाया जा सकता है, ताकि पूंजी पर रिटर्न आकर्षक हो। निविदा के लिए आमंत्रण वैश्विक होना चाहिए।

यह किसी से छिपा नहीं है कि भारतीय शहरों में भीड़भाड़ बढ़ रही है। शहरी नवीनीकरण और स्मार्ट सिटी कार्यक्रम का प्रभाव बहुत सीमित रहा है और जीवन की सुगमता में बमुश्किल ही कोई सुधार हुआ है। तमाम नए छोटे और मध्यम आकार के शहरों का निर्माण करके ही तेजी से बढ़ती शहरीकरण की चुनौती का सामना किया जा सकता है।

वास्तव में, नए शहरों का विकास शहरी विकास को प्रबंधित करने, संगठित बुनियादी ढांचा विकसित करने, भीड़ को कम करने, आवाजाही में लगने वाले समय को घटाने और कम लागत पर बेहतर जीवन स्तर उपलब्ध कराने की दिशा में एक रणनीतिक दृष्टिकोण प्रदान करता है। आर्थिक रूप से भी नए शहर आकर्षण से ओतप्रोत होते हैं। वे नौकरी के अवसर सृजित करते हैं, निवेश को आकर्षित करते हैं और पूरक और सहायक व्यवसायों और सेवा उद्यमों का निर्माण करते हैं।

यह जीडीपी वृद्धि को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ावा देता है। चीन इसका जीता-जागता उदाहरण है। अनुमान है कि पिछले 40 वर्षों के दौरान चीन ने 3,800 नए शहरों का निर्माण किया है। इनमें 15 करोड़ से अधिक लोग निवास करते हैं। भारत को अगर 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनने की संकल्पना को साकार करना है तो यह लक्ष्य हजारों नए छोटे और मध्यम आकार के शहरों के निर्माण के बिना हासिल करना संभव नहीं लगता।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 03-11-25

चीन और अमेरिका की व्यापारिक शक्ति

शेखर गुप्ता

जिस समय मैं यह लेख लिख रहा था, अमेरिका में रात का समय था और हमें नहीं पता था कि सुबह हमें ट्रुथ सोशल पर क्या पोस्ट देखने को मिलेगी या फिर उनसे क्या नया भूराजनीतिक संकेत निकलेगा। परंतु हमें अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप के तौर तरीकों को लेकर कुछ स्पष्टता मिलने लगी है। कुछ रोज पहले ट्रंप तीन एशियाई देशों के दौरे पर निकल रहे थे। उस समय उन्होंने एक चौंकाने वाली और खतरनाक पोस्ट की, 'मैं परमाणु परीक्षण दोबारा शुरू करने की मांग करता हूं ताकि हम चीन और रूस के बराबर स्तर पर हों।' इसके बाद उन्होंने बेतुकी बातें शुरू कर दीं। परमाणु परीक्षण अब किसी को नहीं डराते। रूस और चीन के पास खर्च करने के लिए बहुत सारा यूरेनियम है। ऐसे में इससे परमाणु हथियारों की नई जंग छिड़ती नहीं दिखती।

खतरनाक बात यह थी कि इतना शक्तिशाली व्यक्ति इतना असंतुलित कैसे लग सकता है। मुझे पता है कि ट्रंप के प्रशंसक भी हैं जो कहेंगे कि कैसे शी चिनफिंग ने उनकी तारीफ की, उन्हें शांति का राष्ट्रपति कहा वगैरह वगैरह। दुनिया को ट्रंप की हर बात में कोई न कोई प्रतिभा दिखानी ही पड़ती है। कहा गया, 'अरे वह तो उस पोस्ट के जरिये चीनी नेताओं को नरम करने की कोशिश कर रहे थे।' परंतु चीन परमाणु परीक्षणों से डरने वाला नहीं है। ज्यादातर ऐसा ही था मानो ट्रंप को पता था कि उन्हें झुकना पड़ेगा और उन्होंने ऐसा ही किया। दुनिया का पुनर्गठन हो रहा है और एक ही व्यक्ति ऐसा कर रहा है। उसकी ताकत क्या है? उसकी ताकत मजबूत सेना नहीं है। वह है चीन के साथ व्यापार।

ट्रंप यह समझ चुके हैं कि दुनिया के सबसे बड़े आयातक होने की ताकत क्या है। अगर चीन निर्यात करने वाली महाशक्ति है तो अमेरिका आयात करने वाली महाशक्ति है। ट्रंप ने एक जिम्मेदारी को अपनी बढ़त में बदल दिया है। अगर चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, वियतनाम सभी निर्यात करने वाली शक्तियां हैं। उन्हें अपना अधिशेष कहां से मिलता है। आप भारत को शामिल कर सकते हैं। ट्रंप कह रहे हैं, मुझे पता है कि आपके लिए यह अधिशेष कितना महत्त्वपूर्ण है। मेरे पास आयातक होने का लाभ है। अमेरिका की 30 लाख करोड़ डॉलर की अर्थव्यवस्था अधिकांश प्रमुख देशों के विरुद्ध सब से बड़ी व्यापार घाटे वाली अर्थव्यवस्था है। याद रहे उन्होंने भारत और पाकिस्तान के बीच शांति स्थापना के अपने दावों में व्यापार को भी श्रेय दिया।

तो फिर परमाणु परीक्षण वाली उनकी पोस्ट अटपटी क्यों थी? इसलिए कि उन्हें यह समझ में आ गया था कि चीन उन्हें पटखनी देने की कोशिश कर रहा है। क्योंकि इस समीकरण में चीन के पास विक्रेता की शक्ति भी है और खरीदार की ताकत भी। विक्रेता के रूप में उसके पास महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ हैं। खरीदार के रूप में वह अमेरिकी सोयाबीन और मक्के का सबसे बड़ा ग्राहक है। चीन और ट्रंप दोनों को पता है कि वे चीन को दंडित करने के लिए शुल्क नहीं थोप सकते। यही वजह है कि ट्रंप तुरंत पलटे और क्वालालंपुर के लिए एयर फोर्स वन पर सवार होते हुए उन्होंने 'जी-2' की घोषणा कर डाली।

भारत में हमने इसे समझने से इनकार किया है। हमारा कुल व्यापार अभी भी इतना कम है कि हमारे पास कोई रणनीतिक कदम उठाने की क्षमता नहीं है। अमेरिका को हम जेनरिक दवाओं के अलावा ऐसा कुछ भी नहीं बेचते जिसके बिना उसका काम नहीं चल सके। परंतु खरीदार के रूप में जिस शक्ति का इस्तेमाल हम कर सकते थे उसका भी इस्तेमाल करने से डरते हैं। हम चीन से सीख सकते हैं। चीन अगर अमेरिका से आयात के मुकाबले 300 अरब डॉलर

मूल्य के बराबर का अधिक निर्यात कर रहा है तो आप समझ सकते हैं कि खरीदार के रूप में वह उसके मुकाबले कितना ताकतवर है।

दुनिया के कुल सुअरों में से आधे चीन में पाले जाते हैं। वहां की 1.4 अरब की आबादी में पोर्क और तोफू खाने वालों की तादाद बहुत अधिक है। वह बहुत बड़ी मात्रा में सोयाबीन का आयात और उसकी खपत करता है। सोयाबीन सुअरों को जरूरी प्रोटीन और मक्का उन्हें जरूरी कैलरी प्रदान करता है।

अमेरिका मक्के का सबसे बड़ा उत्पादक और सोयाबीन के सबसे बड़े उत्पादकों में से एक है। अमेरिका की आबादी में केवल एक फीसदी किसान हैं लेकिन वे बहुत मजबूत हैं। सोयाबीन के सौदे के बाद ट्रंप की उत्साह से भरी पोस्ट पर नजर डालिए जिसमें वे किसानों से और अधिक जमीन खरीदने की बात करते हुए इसे खेती का स्वर्णयुग करार देते हैं।

शी चिनफिंग ने संकेत दिया है उनके पास अन्य देशों से कृषि जिंस आयात करने का विकल्प है और इतने से ही ट्रंप पलट गए। भारत में बहस 20वीं सदी के मध्य में रुकी हुई है और विज्ञान को लेकर हमारा नजरिया 19वी सदी में। चीन को कहीं से सोयाबीन खरीदने में दिक्कत भी नहीं है फिर चाहे वह जीएम हो या नहीं। चीन बहुत प्रगतिशील है। चार साल पहले उसने जीएम सोयाबीन बोना शुरू कर दिया था और उसका रकबा साल दर साल बढ़ता गया। चीन की कपास की उपज इस समय हमसे चार गुना है। हमारी कपास की फसल में कमी आई है क्योंकि हमारे बीज जैव प्रौद्योगिकी 2008 में रुकी हुई है। चीन ने हमें दिखाया है कि अगर हमारे पास विक्रय शक्ति या क्रय शक्ति हो तो हम क्या कर सकते हैं। तमाम अन्य देश जिनके पास यह शक्ति नहीं है वे अपमान का सामना करने को विवश हैं।

मेक्सिको अमेरिका के साथ इसलिए समझौता कर सका क्योंकि उसने बड़े पैमाने पर मक्के की खरीद शुरू कर दी। हमने अमेरिका से थोड़ा सोयाबीन खरीदकर उसे अहमियत देने का अवसर गंवा दिया। हम हर वर्ष 18 अरब डॉलर मूल्य का खाद्य तेल आयात करते हैं। इसका बहुत बड़ा हिस्सा सोयाबीन के तेल के रूप में है। हमें पशुओं के लिए चारे की भी जरूरत है। अगर हम अपने पशुओं को सोयाबीन नहीं खिलाना चाहते हैं तो भी हम उसका तेल निकालकर खली निर्यात कर सकते थे। मक्के और एथनॉल के साथ भी ऐसा किया जा सकता था। हम सोयाबीन और मक्का दोनों का आयात करते हैं लेकिन स्वदेशी लॉबी को नाराज नहीं कर सकते। यह तब है जबकि जीएम बीजों को लेकर मोदी सरकार का रुख सकारात्मक है। उसने घरेलू रूप से विकसित जीएम सरसों के खेतों में परीक्षण को लेकर शपथ पत्र भी दिया है।

यह ऐसी दुनिया है जहां महाशक्तियों के रिश्ते इस बात से तय हो सकते हैं कि आप उनसे मक्का खरीदते हैं या नहीं। भारत का पॉल्ट्री उद्योग समस्या में है क्योंकि मक्का महंगा है। वही उनका भोजन है। अगर हमने अमेरिका से कुछ अरब डॉलर का मक्का या सोयाबीन खरीद लिया होता तो यह बेहतर होता जबकि हम उन्हें कहीं से तो मंगाते ही हैं। लेकिन हमने ऐसा नहीं किया।

ट्रंप के मन में आपकी प्रतिष्ठा, इतिहास या राजनीति के लिए कोई इज्जत नहीं है। वह यह कहकर इस बात को जता चुके हैं कि वह मोदी पर बहुत अधिक दबाव इसलिए नहीं डाल रहे हैं क्योंकि वे उनका राजनीतिक करियर खत्म नहीं करना चाहते। वह नैतिक अधिकार की बातों का मखौल उड़ाते हैं। उन्हें केवल सख्ती पसंद है और वह हमें बता चुके हैं कि इसकी कीमत क्या है। ट्रंप देखना चाहते हैं कि आप उनके लिए क्या कर सकते हैं?

चीन से हम दूसरी सीख ले सकते हैं कि अपनी ताकत को छिपाकर सही समय का इंतजार किया जाए। दुनिया की चौथी बड़ी अर्थव्यवस्था बनने और तीसरी की ओर कदम बढ़ाने का हमने जो जश्न मनाया उससे भारत का कोई काम नहीं बन रहा है। बड़ी शक्तियां हमारा मजाक ही बना रही हैं। अब वक्त है थोड़ी विनम्रता के साथ लक्ष्य पर निगाहें जमाए रखने का।

1991 में भारत ने जो अवसर बनाया था उसमें बदली हुई भू-राजनीति ने भी अपना दखल दे दिया है। उस समय अगर भुगतान संतुलन को लेकर संकट पैदा हुआ था, तो आज भारत अगर व्यापार के मामले में संरक्षणवाद को खारिज नहीं करता तो उसे उसकी कीमत चुकानी पड़ेगी। यह भी एक आर्थिक सुधार ही होगा, भले ही दबाव में किया गया हो, जैसा कि 1991 में किया गया था। यही वजह है कि वाणिज्य मंत्री पीयूष गोयल उद्यमियों को चुस्त-दुरुस्त बनने और टैरिफ से बचाने की मांग न करते रहने की सलाह देते रहे हैं। भारतीय अफसरशाही किसी को वर्षों तक लटकाए रख सकती है। उसका समय खत्म हो चुका है। कोई शक हो तो ट्रंप के उन पोस्टों को पढ़ें, जो उन्होंने अपने एशिया दौरे के पहले और बाद में लिखे हैं।

जनसत्ता

Date: 03-11-25

हादसों का सिलसिला

संपादकीय

धार्मिक स्थलों से लेकर अन्य किसी जगह पर बड़ी संख्या में लोगों के जमावड़े में होने वाली भगदड़ की घटनाएं जिस तरह लगातार सामने आ रही हैं, उससे पता चलता है कि व्यापक लापरवाही से उपजी मुश्किल अब कितनी जटिल हो चुकी है। यह एक सख्त टिप्पणी होगी, लेकिन ऐसा लगता है। कि सब कुछ जानते-बूझते हुए भी लोगों के बीच भगदड़ होने के हालात की अनदेखी की जाती है और इस तरह हादसा होने दिया जाता है! वरना क्या कारण है कि हर कुछ दिनों बाद किसी मंदिर और धार्मिक या फिर राजनीतिक जमावड़े के दौरान चारों तरफ पसरी अव्यवस्था और आयोजकों की घोर लापरवाही की वजह से लोगों के बीच भगदड़ मचती है और फिर उसमें नाहक ही लोगों की जान चली जाती है। गौरतलब है कि आंध्र प्रदेश के श्रीकाकुलम जिले के कासीबुग्गा में वेंकटेश्वर स्वामी मंदिर में शनिवार को भगदड़ मचने से कई लोगों की मौत हो गई और पच्चीस से ज्यादा लोग घायल हो गए। एकादशी के दिन की पूजा होने की वजह से श्रद्धालुओं की संख्या आम दिनों के मुकाबले काफी ज्यादा थी। पहली मंजिल पर स्थित मंदिर में जाने-आने का रास्ता एक ही है, जिस पर धक्का-मुक्की की वजह से पहले रेलिंग टूट गई, फिर भगदड़ मच गई।

यानी एक तरह से हादसा होने के हालात पहले ही बन गए थे, मगर मंदिर प्रबंधकों और प्रशासन को उसे संभालने की जरूरत महसूस नहीं हुई। सवाल है कि इस हद तक लापरवाही बरतने वालों को इस हादसे के लिए कठघरे में खड़ा क्यों नहीं किया जाना चाहिए। एक रस्म की तरह सरकार ने घटना की जांच के आदेश दिए हैं, लेकिन अब यह भरोसा करना मुश्किल होता जा रहा है कि सरकारें किसी हादसे से सबक लेकर हर धार्मिक स्थल, राजनीतिक या अन्य किसी आयोजन

में बड़ी संख्या में लोगों का जमावड़ा होने की स्थिति में कुछ नियम-कायदों का पालन सुनिश्चित कराएगी। इसी वर्ष जनवरी में तिरुपति मंदिर में हुए हादसे के बाद आंध्र प्रदेश सरकार ने कुछ उपायों पर चर्चा की थी, लेकिन वे कभी लागू नहीं हुए। क्या सरकारों और प्रशासन के सामने यह चिंता कोई मायने रखती भी है कि धार्मिक या राजनीतिक कारणों से एक जगह बड़ी संख्या में जमा होने वाले लोगों की सुरक्षा का दायित्व उन पर भी है ?

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 03-11-25

अति-गरीबी से केरल की मुक्ति का राज

टीकाराम मीना, (पूर्व अतिरिक्त मुख्य सचिव, केरल)

देश के दक्षिणी राज्य केरल ने एक और ऐतिहासिक उपलब्धि अपने नाम कर ली है। वह भारत का पहला ऐसा राज्य बन गया है, जिसने अत्यधिक गरीबी को मिटाने में सफलता अर्जित की है। बीते शनिवार को मुख्यमंत्री पी विजयन ने बाकायदा राज्य विधानसभा के विशेष सत्र में इसका एलान किया।

एक लोक-कल्याणकारी राज्य के रूप में केरल का इतिहास शुरू से काफी अच्छा रहा है। इसकी एक वजह तो यह रही कि वहां 1957 में ही कम्युनिस्ट सरकार बन गई थी और वामपंथी सरकारों की दिलचस्पी हमेशा से गरीबोन्मुख योजनाओं में अधिक रही है, क्योंकि उनका वोटबैंक भी वही तबका होता है। फिर उन्होंने साक्षरता पर भी बहुत जोर दिया। करीब साढ़े तीन दशक पहले जब मैं वहां सब कलक्टर था, तभी साक्षरता अभियान शुरू हुआ था और यह बेहद कामयाब रहा। इसका सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि राज्य के लोगों में काफी जागरूकता आई। वे सरकारी योजनाओं और अपने अधिकारों को लेकर अधिक सजग हुए।

केरल में गरीबी दूर करने को लेकर सिर्फ भाषण नहीं दिए गए, बल्कि इसे लेकर गंभीर चिंतन हुआ और कारगर योजनाओं के निर्माण व क्रियान्वयन में काफी ईमानदारी बरती गई। इसका सबसे बड़ा उदाहरण है कुटुंब श्री योजना सन् 1998 में नायनार के नेतृत्व वाली 'एलडीएफ सरकार' ने इसकी शुरुआत की थी। इसका लक्ष्य गरीबी उन्मूलन के साथ-साथ महिलाओं का सशक्तीकरण करना था। योजना की शुरुआत तो वाम मोर्चा सरकार ने की, मगर दो-ढाई साल बाद ही सत्ता में कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार आ गई। उत्तर भारत का कोई प्रदेश होता, तो यह योजना संकीर्ण सिवासी सोच का शिकार हो जाती, मगर एके एंटोनी सरकार ने इसे कामयाब बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

कुटुंब श्री एक 'क्लस्टर स्कीम' थी। इसके तहत किसी भी क्षेत्र की 25-30 महिलाएं मिलकर एक समूह गठित कर अपना व्यवसाय शुरू कर सकती थीं और इसके लिए कर्ज ले सकती थीं। खासकर ग्रामीण केरल में यह योजना काफी सफल रही। अति गरीबी के अंत का ठोस आधार बनना शुरू हो गया। वैसे भी, केरल में शुरू से गरीबी रेखा के नीचे गुजर-बसर करने वालों की संख्या कम रही है। इस सदी की शुरुआत में जब देश में गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की संख्या करीब 36 फीसदी थी, तब केरल में यह महज 11 प्रतिशत थी।

नीति आयोग ने पिछले साल राज्यवार बहुआयामी गरीबी की एक रिपोर्ट जारी की थी, जो 2021 के एमपीआई आंकड़ों पर आधारित थी। इसके मुताबिक, बिहार के करीब 52 फीसदी लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन जी रहे थे, तो झारखंड के लगभग 42 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश के 38 फीसदी के आस-पास लोग इस रेखा के नीचे थे। केरल में तब महज 0.71 प्रतिशत अति गरीब रह गए थे। जाहिर है, उसके पास बहुत छोटा लक्ष्य रह बचा था। मगर इससे उसकी कामयाबी का महत्व कम नहीं हो जाता।

केरल की तरक्की से सीखने लायक बहुत कुछ है। उसकी बहुआयामी सफलता में पंचायती राज संस्थाओं का बहुत बड़ा योगदान है नरसिंह राव सरकार ने संविधान के 73वें 74वें संशोधन के जरिये सत्ता के विकेंद्रीकरण और पंचायतों व नगरपालिकाओं के स्वशासन को सांविधानिक दर्जा देने का काम किया था। जब ये विधेयक पारित हुए थे, तब सबसे ज्यादा जोर इसी बात पर दिया गया था कि पंचायती राज संस्थाओं को विधायकों और सांसदों के चंगुल से आजाद करवाया जाए। ये धन के लिए उन पर निर्भर न रहें। इनकी आत्मनिर्भरता के लिए तीन चीजों- 'फंड', 'फंक्शनरीज' और 'फंक्शन' को काफी महत्व दिया गया था। इन कानूनों के तहत पंचायतों को 29 विषय सौंपे गए थे।

मगर तमाम राज्यों ने जहां इस दिशा में सिर्फ जुबानी खर्च ज्यादा किए, वहीं केरल ने इनको इनकी पूरी भावना साथ लागू किया। उसकी पंचायतों व नगरपालिकाओ को पूरे 29 विषयों के अधिकार हस्तांतरित हुए। केरल ने यह भी सुनिश्चित किया कि उसके बजट की 40 प्रतिशत राशि पंचायतों को सीधे आवंटित हों। सरकारी अधिकारियों का एक कैडर भी उनके लिए बनाया गया। दूसरे सूबों ने यह प्रतिबद्धता नहीं दिखाई।

केरल में प्रत्येक पंचायत के पास एक-दो इंजीनियर होते हैं, जो उसकी तकनीकी जरूरत वाली योजनाएं बनाते हैं, जिनको 'स्थानीय विकास योजना' कहते हैं। इन पर ग्रामसभा में बहस होती है और प्राथमिकता के आधार पर वही इनके लिए धन मंजूर करती है। पंचायतों को अपनी किसी सिंचाई योजना या भवन निर्माण के लिए विधायक-सांसद के आगे गिड़गिड़ाने की नौबत ही नहीं आती। बाकी राज्यों में सांसद विकास निधि और विधायक विकास निधि से धन पाने के लिए पंचायत प्रतिनिधि उनके पीछे-पीछे भागते रहते हैं। पंचायतें वहां स्वायत्त नहीं हो सकीं। यह संविधान की मूल भावना के विपरीत है।

बाकी प्रदेशों का एक बड़ा नुकसान यह भी हुआ है। कि पंचायतों में कार्य क्षमता निर्माण का काम नहीं हो पाता, क्योंकि पंचायत कर्मियों के प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था ही नहीं है। ऐसे में, महिलाएं सरपंच तो बन जाती हैं, मगर उनको नियम-कानून का पता ही नहीं होता। प्रशिक्षण के अभाव में जान ही नहीं पातीं कि उनके क्या-क्या अधिकार हैं? केरल के अपने कार्यकाल के दौरान मैंने दो साल में पंचायतकर्मियों के 1,000 से अधिक प्रशिक्षण कार्यक्रम करवाए थे। सबसे खास बात यह है कि केरल में स्थानीय लोगों की सहभागिता काफी होती है। भले ही कोई कम्युनिस्ट विचारधारा का हो या कांग्रेसी विचारधाराका, ग्रामसभा में लोग झगड़ते नहीं । वहां पंचायतें अवकाश प्राप्त स्थानीय पेशेवरों व कुशल लोगों का एक 'रिसोर्स ग्रुप' बनाती हैं और स्थानीय विकास योजना को तैयार करने में उनकी मदद लेती हैं। केरल में भ्रष्टाचार अन्य सूबों के मुकाबले न्यूनतम है।

केंद्र सरकार ने भी नीति आयोग की निगरानी में 2018 से देश के सबसे गरीब व पिछड़े 112 जिलों में एक ' आकांक्षी जिला कार्यक्रम' की शुरुआत की है। इसके तहत इन जिलों से अति गरीबी के उन्मूलन का इरादा है। मगर जब तक किसी स्वतंत्र संगठन से मूल्यांकन नहीं कराया जाएगा, तब तक सही प्रगति की सटीक जानकारी नहीं मिल सकेगी। अगर

सरकारी अधिकारी ही प्रगति रिपोर्ट देते रहेंगे, तो उनकी विश्वसनीयता हमेशा संदिग्ध रहेगी। केरल में यह होता है। इसको 'क्रिटिकल अप्रेजल' कहते हैं। केंद्र सरकार को भी ऐसा करना चाहिए। कुल मिलाकर, केरल की यह उपलब्धि अन्य राज्यों को आईना दिखा रही है- नीतियों के ईमानदार क्रियान्वयन से गरीबी को शिकस्त दी जा सकती है।

Date: 03-11-25

पर्याप्त खनिज के बावजूद रेअर अर्थ में हम पीछे क्यों

अमित त्रिपाठी, (भू-वैज्ञानिक)

इक्कीसवीं सदी में, महत्वपूर्ण खनिजों पर नियंत्रण भू- राजनीतिक 'हार्डपावर' की प्राथमिकता बन गई है। मगर दिक्कत यह है कि भारत की खनिज आवंटन नीति जाने- अनजाने देश की भू-राजनीतिक आकांक्षाओं को कमजोर कर रही है और राष्ट्र की सामरिक स्वायत्तता व राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा कर रही है। अमेरिकी टैरिफ इसका ज्वलंत उदाहरण है। अमेरिका ने रूसी तेल आयात के लिए भारत पर टैरिफ लगाया, जबकि उसी तेल के एक बड़े आयातक चीन को छूट दे दी, क्योंकि 'रेअर अर्थ' की वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में उसे लगभग एकाधिकार प्राप्त है।

आज के समय में रेअर अर्थ की कूटनीतिक अहमियत काफी ज्यादा है। उच्च तकनीकी रक्षा, स्वच्छ ऊर्जा और उपभोक्ता इलेक्ट्रॉनिक्स में अपरिहार्य भूमिका इसे वैश्विक शक्ति संतुलन का एक महत्वपूर्ण घटक बनाती है। यह सीधे तौर पर किसी देश की सैन्य और आर्थिक क्षमताओं को प्रभावित करती है। इसकी वैश्विक आपूर्ति में चीन सबसे आगे है। वह वैश्विक खनन का 69 प्रतिशत और प्रसंस्करण का 91 प्रतिशत हिस्सा नियंत्रित करता है। यह उपलब्धि उसने संयोगवश नहीं पाई है, बल्कि यह उसकी सोची-समझी और दीर्घकालिक रणनीति का नतीजा है। नतीजतन, उच्च तकनीक विनिर्माण में उसने मजबूत पकड़ बना ली है। वह अपनी 'विदेश नीति' के रूप में इसका खासा इस्तेमाल करता है, जैसे- 2010 में उसने एक क्षेत्रीय विवाद के दौरान जापान को रेअर अर्थ की आपूर्ति रोक दी. जिस कारण टोक्यो के इलेक्ट्रॉनिक्स और रक्षा उद्योगों में भारी संकट उत्पन्न हो गया। दूसरा उदाहरण, उसकी हालिया निर्यात लाइसेंसिंग नीति है, जिस कारण उसने इसके निर्यात पर प्रतिबंध लगा दिए और अमेरिका को आखिरकार बीते गुरुवार को उससे सहमति बनानी पड़ी। रेअर अर्थ पर चीन का नियंत्रण उन सभी देशों के लिए बड़ा खतरा है, जो इसके आयात पर निर्भर हैं। भारत जैसी उभरती ताकतों के लिए यह विशेष रूप से चिंतनीय है।

ऐसा नहीं है कि अपने देश में खनिज संपदा कम है। हमारे पास दुनिया का पांचवां सबसे बड़ारे अर अर्थ भंडार है, लेकिन वैश्विक उत्पादन में हमारी हिस्सेदारी महज एक प्रतिशत है। यह बताता है कि हमारी भू-वैज्ञानिक क्षमता और वास्तविक उत्पादन के बीच कितनी चौड़ी खाई है। इसके कारक नीतिगत और ढांचागत हैं। मसलन, भारत में रेअर अर्थ के उत्पादन और प्रसंस्करण के लिए जरूरी प्रौद्योगिकी का अभाव है। फिर, अनुसंधान और उद्योग के बीच का संबंध भी काफी कमजोर है, जिस वजह से प्रयोगशाला में हासिल की गई सफलता औद्योगिक स्तर पर प्रभावी रूप से लागू नहीं हो पाती। इतना ही नहीं, खनिज आवंटननीति में अन्वेषण व खनन के बीच के मौलिक अंतर पर ध्यान नहीं दिया जाता, जबकि विश्व स्तर पर सफल देशों ने इससे अलग नजरिया अपनाया है। वे यही मानते हैं। कि खनिज अन्वेषण एक अद्वितीय, आला व्यावसायिक गतिविधि है, जो खनन से भिन्न है।

जाहिर है, भारत एक महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़ा है। हाल की भू- राजनीतिक घटनाएं स्पष्ट चेतावनी हैं कि नीतिगत बदलाव महज आर्थिक सुझाव नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक रणनीतिक अनिवार्यता है। भारत को नीलामी मॉडल के बजाय 'पहले आओ, पहले पाओ' की आवंटन प्रणाली अपनानी चाहिए। यह देश में खनिज खोज के लिए आवश्यक उच्च जोखिम वाली उद्यमशील पूंजी को आकर्षित करने का एकमात्र सिद्ध मार्ग है। इसके अलावा, इससे जुड़े अन्य कामों पर भी ध्यान देना होगा, जैसे इस बाबत अमेरिका, जापान व ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों के साथ सहयोग बढ़ाना चाहिए, आईआरईएल जैसे सार्वजनिक उपक्रमों का उद्धार करना चाहिए और रीसाइक्लिंग, विकल्पों की खोज व सामरिक सामग्रियों के भंडार को आधुनिक बनाने पर ध्यान देना चाहिए।

हमें यह समझना ही होगा कि खनिज आत्मनिर्भरता से मिलने वाले भू-राजनीतिक लाभ किसी नीलामी से प्राप्त राजस्व से कहीं अधिक उपयोगी हैं। 'पहले आओ, पहले पाओ' मॉडल को अपनाने से भारत की विशाल भू- वैज्ञानिक क्षमताको विस्तार मिलेगा। इतना ही नहीं, इससे 'आत्मनर्भिर' बनने की हमारी राह भी आसान होगी।